Pratnakīrti, Volume 5, Issue 2, 2024 ISSN: 2322-0694

काव्य के राजपथ पर मेरे दो कदम

ताराशङ्कर शर्मा पाण्डेय

कुलपति, श्रीकल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय निम्बाहेड़ा, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)
पूर्व आचार्य साहित्य, ज० रा० राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

छात्र जीवन में प्रतिभा के बल पर काव्य के जिस मार्ग पर मैंने कदम रखा, आज मैं उस काव्य-यात्रा के बहुत से पड़ाव पार कर काफ़ी कुछ आगे बढ़ आया हूँ। इन अवसरों पर बहुत कुछ लिखा, जो अस्तव्यस्त होने के बावजूद काव्य, कथा, नाट्य आदि के रूप में प्रकाशित हुए और राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत भी हुए, जिनमें संस्कृत में *सारस्वतसौरभम्*, *राष्ट्ररक्षणम्*, *हंसरक्षणम्*, *वृक्षरक्षणम्*, *वर्णवाग्विलासकाव्यम्*, *अहमेव राधा अहमेव कृष्णः* (अनूदित एवं पुरस्कृत) तथा राजस्थानी भाषा में साहित्य अकादेमी, दिल्ली से प्रकाशित *प्रश्नोत्तरमाला* आदि उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक पाण्डुलिपियाँ अभी भी संरक्षित हैं, प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं, जिनकी संख्या में वृद्धि निरन्तर हो रही है। इनमें *केलिशून्यसौरभम्*, *आत्मालापः*, *भारतीयस्त्रिरङ्गः* आदि उल्लेखनीय हैं।

1 पाथेयग्रहण

प्रथम शिक्षा गुरु माँ के बाद, पिता ही शिशु को जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मेरे जीवन को भी सँभाला और संस्कारित किया मेरे पितृचरण—राष्ट्रपति-सम्मानित, प्रतिनव-बाणभट्ट पं० मोहनलाल शर्मा पाण्डेय ने, जिन्होंने 'गुरु की चोट, विद्या की पोट' के अनुसरण में डण्डे के बल पर मुझे हाँका। हालाँकि ऐसे समय में मेरी माँ मुन्नी देवी की ममता बीच में आड़े आ जाती, फिर भी काव्यमार्ग पर चलने की नींव रखी गई शायद आठवीं कक्षा से ही—कोष और व्याकरण के दो सुदृढ पत्थरों से। इन्हीं काव्य-कसौटियों पर रगड़-रगड़कर चमकाने के लिए प्रत्येक ग्रीष्मकालीन अवकाश में घोटा लगवाया गया अमरकोष और धातुपाठ के साथ, शब्दरूपों एवं छन्दों का अभ्यास, और सत्रारम्भ में पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन-अध्यापन के साथ प्रायोगिक शिक्षा। यह सब सदा ही आगे के समय में काव्यपथ पर चलने का कलेवा बनकर साथ रहा तथा शास्त्री कक्षा में आते-आते शुद्ध संस्कृत लेखन का आधार बना और काव्य के राजपथ पर अग्रसर होने का अवसर प्रदान किया।

2 छात्र जीवन और कविता

मेरी शिक्षा माध्यमिक से शास्त्री (बी०ए०) तक जोधपुर के राजकीय दरबार आचार्य संस्कृत कॉलेज, जो प्राइमरी से आचार्य पर्यन्त सञ्चालित था, में हुई; कारण कि मेरे पिता पं० मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' इसी संस्था में कॉलेज व्याख्याता के रूप में नियुक्त रहे। यहीं पर आठवीं में प्रविष्ट होकर अध्ययन करते हुए शास्त्री कक्षा में पहुँचा। कॉलेज के राजस्थान

Lalashankar Gayawal and Umesh Kumar Singh (Ed.) pp. 117-128
© Pratnakīrti Oriental Research Institute, Vārāṇasī, U.P., India
Recieved 20 August 2024, Accepted 05 December 2024
This paper is available at https://www.pratnakirti.com/Home/Index

विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होने के कारण शास्त्री कक्षा के अन्तिम वर्ष की परीक्षा में काव्यरचना भी निर्धारित थी, जिसके लिए (शास्त्री के पूर्व वर्षों में ही) पिताजी के निर्देशानुसार काव्य-रचना का अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया गया और 17 वर्ष की आयु में सन् 1975 के अन्तिम महीनों में *पञ्चतन्त्र* की जम्बूक-कथा को अनुष्टुप् के आठ श्लोकों में 'लोभस्य फलमेव मृत्युः' के रूप में तथा *गणतन्त्रात्मकं राज्यम्* शीर्षक से मातृभूमि भारत के लिए भी अष्टक की रचना की। इसके बाद 1976 के गणतत्र दिवस पर 26 जनवरी के समारोह में अपनी कविता की पहली प्रस्तुति की गई, अनुष्टुप् छन्द में रचित आठ श्लोकों से—*गणतन्त्रात्मकं राज्यम्* शीर्षक से।

पाठ्यक्रम में निर्धारित महाकवि माघ के *शिशुपालवधम्* और भारवि के *किरातार्जुनीयम्* काव्यों के प्रारम्भिक पाँच-पाँच सर्गों तथा *कादम्बरी* के कोष तथा टीकाओं के अनुशीलन से और भगवती सरस्वती के कृपा-कटाक्ष से नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का प्रादुर्भाव हुआ। फलतः काव्यरचना में गति ने रफ्तार पकड़ी। महाकवि माघ की ख्याति के सन्दर्भ में एक अनुष्टुप् की रचना की गई—

वधं कृत्वा तु कुख्याताः सर्वे भवन्ति मानवाः।
शिशुपालवधं कृत्वा माघः सुख्यातिमागतः॥

जब खजाने में शब्दों/रूपयों का भण्डार भरा हो तो मन-मस्तिष्क खर्चा करने को आतुर हो ही जाता है। यही हुआ—शब्द उछल-उछलकर बाहर आने लगे कविता रूप में। काव्य ग्रन्थों की शैली और अलङ्कार प्रयोग ने मेरी कविता के सौन्दर्य को निखारना प्रारम्भ किया; परिणामस्वरूप कविता-वनिता अलङ्कृत रूप में फलने लगी। प्रकृति-प्रेम के कारण वृक्षों पर बैठे पक्षियों का वर्णन मेरे द्वारा उपजाति छन्द में इस प्रकार किया गया है—

विभाति सन्ध्यासमये मनोज्ञा
स्वनीडनिष्कासितचञ्चुभागा।
विचित्रवृक्षेषु विहङ्गवीथी
कलानि कान्तानि करोति या च॥

शास्त्राध्ययन का प्रभाव तो कविता रचना पर पड़ना स्वाभाविक ही था। फलतः *साहित्यदर्पण* में अभिधामूल व्यंजना के प्रसंग में उल्लिखित 'दुर्गालङ्घितविग्रह...' श्लोक के चिन्तन ने चमत्कार दिखाया और इसके 'उमावल्लभ इव उमावल्लभ' के समान ही अनुष्टुप् की रचना बनाई, जिसमें 'कलहंस इव कलहंसः' की अभिव्यक्ति श्लेष अलङ्कार से हो रही है—

चञ्चलकमलाभोगी धवलधामशोभितः।
सघनवनसञ्चारी कलहंसोऽतिशोभते॥

यहाँ प्रयुक्त सम्पूर्ण विशेषणों से *कलहंसः* (नृपोत्तमः), *कलहंसः* (राजहंसः) *इव* में अभिधामूल व्यञ्जना प्रकट होती है। मेरे प्रिय अलङ्कारों में अनुप्रास, उपमा, यमक, समासोक्ति,

विरोधाभास, श्लेष आदि का कविताओं में जब-तब प्रयोग स्वतः बन ही जाता है। इसमें साहचर्य होता है एकान्त और प्रकृति का, और कविता पहनती है अमलीजामा कवि के भावों का, जिसमें कहीं न कहीं उन संस्कारों का भी योगदान होता है, जो काव्यज्ञ मेरे पितृचरण—राष्ट्रपति-सम्मानित, प्रतिनव-बाणभट्ट पं० मोहनलाल शर्मा पाण्डेय द्वारा दी गई शिक्षा, अभ्यास और निपुणता से शक्ति का स्वरूप सामने आ ही जाता है। सूर्योदय और रात्रि का संगम कदापि संभव नहीं है—यही भाव इस श्लोक में प्रकट हो रहा है—

चिरं प्रतीक्षते रात्रिः सूर्यसमागमोत्सुका।
प्रभाते तु तमायान्तं ज्ञात्वा मुग्धेव लीयते॥

यह छात्र जीवन की रचना है, जहाँ समासोक्ति अलङ्कार के रूप में रात्रि और सूर्य नायक-नायिका की अभिव्यक्ति देते हैं। परन्तु आज यदि समीक्षक पढ़ते हैं तो निशापति चन्द्रमा के आधार पर रात्रि को सूर्यसमागम के लिए उत्सुक मानकर उसे खण्डिता नायिका के रूप में स्थान देंगे। पर बालकवि को क्या कह सकते हैं।

एक बार सायंकाल आवास की छत पर भ्रमण करते हुए किसी पक्षी को खुले आकाश में उड़ते हुए देखा, तो मेरे ज़ेहन में एक कोष की पङ्क्ति—

पुष्करं पङ्कजे व्योम्नि पयःकरिकराग्रयोः।
औषधिद्वीपविहगतीर्थराजोरगान्यरे॥

का अनुगूँजन होने लगा तथा पक्षी की उड़ान में मेरी कविता ने भी उड़ान भरी और आकाश, पक्षी, लक्ष्मीजी के लिए पुष्प तोड़ने वाले हाथी और जलाशय के स्थायी भाव-चिन्तन के अर्थ ने रूप पाया यमक-अलङ्कार की प्रस्तुति में—

पुष्करे पुष्करं जातं त्रोटितं पुष्करेण तत्।
पुष्करे तेन संकीर्णं पुष्करेण पुनर्हृतम्॥

यहाँ स्वाभाविक रूप से मन में उपस्थित दृश्य/रेखाचित्र ने कविता का रूप पा लिया; अर्थात्—*पुष्कर* तीर्थ या तालाब में कमल खिला, वहीं तैरते हुए हाथी ने अपनी सूँड़ से कमल तोड़ा, कब तक सम्भालता—सो आकाश में उछाल दिया, और उधर से उड़ते हुए सारस पक्षी ने कमल का हरण कर लिया।

इसी तरह एक बार भगवान् गणेशजी के स्वरूप अथवा स्वभाव का चिन्तन किया। तब कोष, व्याकरण के साहचर्य से साहित्यशास्त्र ने अपना चमत्कार दिखाया। तो एक बार गणपति के स्वरूप में विरोधाभास छा गया दिमाग पर, शब्दों के जंजाल से—और फिर प्रकट हुई प्रो० पाण्डेय की आर्या—

नायकोऽपि विनायको लम्बोदरोऽपि विलम्बोदरो नः।
विरक्षतु स्थूलत्वाद् विघ्नराजोऽप्यविघ्नराजः॥

यह रचना जब पितृचरण राष्ट्रपति-सम्मानित प्रतिनव-बाणभट्ट पं० मोहनलाल शर्मा पाण्डेय जी को सुनाई, तो *विलम्बोदर* शब्द पर जबरदस्त चर्चा हुई। मुझसे पूछा गया, मैंने अपने स्मृत धातुपाठ के बल पर इसे सिद्ध करने का प्रयास किया और अन्त में सफल भी रहा। पहले '*ऋ गतौ*' धातु से 'अरः' सिद्ध किया, फिर 'उत्' उपसर्ग का प्रयोग करते हुए बड़े ही आत्मविश्वास से कहा—'स्थूलत्वात् इति हेतोः, विलम्बेन उत् ऊर्ध्वं गच्छति इति *विलम्बोदरः* ।' यद्यपि इसके अन्तिम विरोधाभास का परिष्कार बहुत बाद में किया गया।

इन्हीं दिनों में जनसंख्या नियन्त्रण का अत्यधिक बोलबाला था। इसी प्रसंग में मैंने एक छन्दोरहित कविता भी *कोयं तस्या अपराधः* लिखी। इसके अन्तिम तुकान्त बन्ध में—'*तत्स्वीकुरु निरोधम्, क्व वा रोधः, विधेरब्धिरगाधः*' में प्रयुक्त शब्द *रोधः* पर कॉलेज में पिताजी ने निर्देश दिया कि यह तो नपुंसकलिङ्ग शब्द है। मैंने तुरन्त पुंल्लिङ्ग बताया और टीका में उल्लिखित—'*पुंसि वा*' कहा।

अध्ययन के इस दौर में अनेक सरल रचनाओं का अभ्यास करते-करते उत्तम श्लोकों की रचना बनी, जो आगे चलकर पत्रिकाओं में छपी। शास्त्री कक्षा के अन्तिम वर्ष की परीक्षा में श्लोक निर्माण वाले प्रश्नपत्र के अन्य विषयगत प्रश्नों को हल करने के बाद आंशिक रूप में निर्धारित रचना के लिए प्रदत्त विषय एवं छन्द के अनुसार एक अनुष्टुप् तथा एक उपजाति की रचना की, किन्तु मेरी स्मृति में अनुष्टुप् रहा जिसे मैंने घर आकर डायरी में लिखा, वह इस प्रकार है—

विष्णुपादप्रभूता या शिवशिरोविधारिता।
अमृतसदृशक्षीरा लोके गङ्गा विराजते॥

इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी उपजाति-रचना ठीक नहीं बनी थी, और न ही स्मृति में रह सकी। जोधपुर से शास्त्री उत्तीर्ण करने के बाद अध्ययन के लिए जयपुर के महाराज संस्कृत कालेज में साहित्याचार्य कक्षा में प्रवेश लिया। मेरी *'लोभस्य फलमेव मृत्युः'* कविता संस्कृत मासिक पत्रिका *भारती* में छपने भेजी, जो मई 1980 के अङ्क में प्रकाशित हुई। पत्रिका प्राप्त होते ही पहली कविता छपने से मन बहुत प्रफुल्लित हुआ। इससे उत्साहित होकर उपर्युक्त कुछ विशेष पद्यों को इकट्ठा कर टिप्पणी सहित पुनः *भारती* पत्रिका में छपने भेजा, जो अक्टूबर 1980 के अङ्क में *मुक्तकपद्यानि* शीर्षक से यथावत् प्रकाशित हुई। इस तरह पत्रिकाओं में कविताओं के साथ-साथ शोधलेख भी छपना प्रारम्भ हुए। यहाँ अध्ययन एवं रचनात्मक कार्य के साथ ही विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लिया और पुरस्कार भी प्राप्त किये। लगभग इसी समय राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा जगद्गुरु श्री निम्बार्क पीठ, सलेमाबाद में संस्कृत रचना-धर्मिता का शिविर लगाया गया, जहाँ वरिष्ठ काव्यज्ञ विद्वानों के सान्निध्य में कुछ नया सीखने को मिला।

3 सेवाकाल और रचना-धर्मिता का पूर्वार्द्ध

अध्ययन समाप्त कर साहित्याचार्य की उपाधि लेने के बाद जयपुर के श्री दादू आचार्य संस्कृत कालेज में व्याख्याता बना और शीघ्र ही राजस्थान लोक सेवा आयोग के माध्यम से संस्कृत

शिक्षा विभाग के राजकीय साङ्गवेद संस्कृत कालेज, चिराणा (झूञ्झुनूँ) में व्याख्याता के पद पर 10 दिसम्बर 1980 को कार्यारम्भ किया। यहाँ के पर्वतीय प्राकृतिक सुरम्य वातावरण में मन तो बहुत लगा पर घर से दूरी अखरती रही। कविमन के संस्कृत के साथ हिन्दी कविता की ओर भी कदम बढ़े और *'सिर्फ पेट के खातिर'* तथा अल्पवेतन भोगी के जीवन पर *'अहसान'* जैसी छन्दोरहित हिन्दी कविताएँ लिखीं। इसी स्थान पर ग्रामीणों की संस्कृत के प्रति उपेक्षा को ध्यान में रखकर मालिनी छन्द में *'दुरवस्था संस्कृतस्य'* शीर्षक से एक पंचक का निर्माण किया गया—

सकलसुजनभाषा देववाणीह देशे
पटुबटुभिरधीता सा न दृष्टा क्व याता?।
जठरभरणलग्नैः साम्प्रतं स्वीकृताऽऽस्ते
जनमतमिति भाषा पाठपूजाजपानाम्॥ ४॥

यह कविता-पञ्चक *भारती* पत्रिका के अक्टूबर 1983 तथा पुनः अप्रैल 1984 के अङ्क में प्रकाशित हुआ। एक बार जयपुर के निकट महापुरा के कालेज में नियुक्ति के दौरान राज्यस्तरीय क्रीड़ा प्रतियोगिता आयोजित हुई, तब 18 नवम्बर 1987 को स्वागत-गीतिका की रचना की, जिसका छात्रों द्वारा समारोह में गायन किया गया और इस अवसर पर प्रकाशित पत्रिका *क्रीड़ाञ्जलि* में छपी भी। इसी दौर में लिखी गई दहेज के सन्दर्भ में *'किं नामधेयं यौतुकम्'* नामक कविता, जिसमें दहेज की अपेक्षा लज्जाशील नारी का मिलना श्रेयस्कर बताया गया है—

लज्जाभरणभूषिता प्रसन्ना भवेद् भूषिता।
गुरु शुश्रूषाचरणा कान्तानुसारिचरणा॥
एवं गुणगणग्रथिता नास्ति चेद्
व्यर्थं ते सयौतकं यऔवततम्।
किं नामधेयं यौतुकम्॥

इस यात्रा के मध्य में ही एक बार फिर राजस्थान लोक सेवा आयोग से प्रोफेसर साहित्य के पद पर प्रोन्नति प्राप्त कर उदयपुर के महाराणा आचार्य संस्कृत कालेज में 06 अप्रैल 1988 को नियुक्त हुआ। नया पद, नया शहर, नये विचारों के नवोन्मेष से प्रतिभा को स्फूर्ति मिली और अन्यान्य कविताओं की रचना के दौरान 13 अक्टूबर 1989 को कालिदास के प्रति भाव उमड़ पड़े और *'कालिदासः शिरोमणिः'* शीर्षक से प्रशस्तिपरक एकादशक बनाया, जिसके अन्तिम दो श्लोक यहाँ उद्धृत हैं—

सारस्वतं स्वादु सुधाभिषिक्तं
सत्सूक्तिसाहित्यसमुद्रसारम्।
सङ्गृह्य काव्यं कविकालिदासः
कृते कृतिनां कलशीकरोति॥ १०॥

नवरसपरिपूर्णं शब्दवाच्यप्रतीतं
स्वकृतिषु कमनीयं काव्यकेलिप्रकर्षम्।
ध्वनयति सकलं यो भारतीभासमानः
कविकुलगुरुवर्यः कालिदासो गुरुर्मे॥ ११॥

इस कालिदास-प्रशस्ति को आदरणीय डॉ० रमाकान्त शुक्ल, जो बाद में पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित हुए, द्वारा अपनी *'अर्वाचीन-संस्कृतम्'* पत्रिका के 15 जुलाई 1991 के अङ्क में प्रकाशित करने से मैं धन्य हुआ। इस पत्रिका में यह मेरी दूसरी रचना रही, इससे पूर्व राजस्थान से बाहर मेरी पहली निश्छन्द कविता *'मेघदूतः'* इसी *अर्वाचीन-संस्कृतम्* के 15 जुलाई 1990 के अंक में छपी थी। इसके पश्चात् दिल्ली संस्कृत अकादमी की *'संस्कृतमञ्जरी'* के जनवरी–मार्च 1995 अंक में विद्युन्माला छन्द में रचित *'सज्जीभूता सिन्धोर्बाला'* के प्रकाशन के बाद विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में मेरी कविताएँ निरन्तर प्रकाशित होने लगीं, जिनमें *मेघदूतः*, *मेघे माघे गतं वयः*, *गच्छ रे गच्छ क्लान्त कान्त!*, *हले शकुन्तले!*, *ब्रह्मलीना शङ्कराचार्याः* आदि प्रमुख हैं। मेरी प्रकाशित कविताओं के प्रसार के मद्देनज़र राजस्थान संस्कृत अकादमी ने 1997 के कवि सम्मेलन में मुझे आमन्त्रित किया। अकादमी के इस कवि सम्मेलन में देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ० हरिराम आचार्य, डॉ० नारायण शास्त्री काँकर, डॉ० पद्म शास्त्री, पं० मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' जैसे राज्य के वरिष्ठ कवियों के मध्य मेरी यह प्रथम सहभागिता रही। इसके लिए मैंने अपने आपको सन्नद्ध किया और कुछेक नवीन कविताओं की प्रस्तुति दी। इसके बाद मुझे कवि सम्मेलनों में प्रायः बुलाया जाता रहा और यह सिलसिला निरन्तर बना रहा।

इन्हीं दिनों में भारत की आज़ादी की पचास वर्ष पूरे होने पर *'स्वर्णजयन्ती'* मनाई जा रही थी और विभिन्न संस्कृत अकादमियों ने इस शुभ अवसर पर विशेष ग्रन्थ प्रकाशन का बीड़ा उठाया तथा संस्कृत लेखकों से रचनाएँ आमन्त्रित की गईं। मैंने भी इस उद्देश्य से पद्यात्मक *'बारहठसिंहत्रयी'* और गद्य में *'स्वातन्त्र्यान्दोलनहुतात्मचतुष्टयी'* की रचना की। ये दोनों ही रचनाएँ 1998 में राजस्थान संस्कृत अकादमी से प्रकाशित *स्वातन्त्र्य-सहयोगिनः* ग्रन्थ में छपीं तथा *'बारहठसिंहत्रयी'* तो दिल्ली संस्कृत अकादमी के विशाल ग्रन्थ *'स्वातन्त्र्य-स्वर्णसौरभम्'* में प्रकाशित हुई। यही वह समय था जब सरस्वती के लिए *'देवि! दिव्यभारति!'* की अधूरी पड़ी स्तुति को प्रो. सुरेन्द्रकुमार शर्मा, जो बाद में राजस्थान के संस्कृत शिक्षा विभाग में निदेशक भी रहे, के कहने पर पूरी की। बाद में यह सरस्वती वन्दना वर्षों तक राज्यस्तरीय संस्कृत दिवस समारोह में सङ्गीत के साथ प्रस्तुत की जाती रही।

काव्य विधा के अन्तर्गत गद्य, पद्य तथा नाट्य—तीनों का ही समावेश है। अतः कवियों से अपेक्षा की जाती है कि वे पद्य से भिन्न विधाओं में भी रचनाएँ करें। इसी सोच से दिल्ली संस्कृत अकादमी ने लेखकों से मौलिक बाल-नाट्य रचनाएँ आमन्त्रित कीं। *भारती* पत्रिका में प्रकाशित यह विज्ञापन मेरी नजर में भी आया। उन दिनों मैं जयपुर के निकट मनोहरपुर के राजकीय आचार्य संस्कृत कालेज में प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त था। व्यस्तता अधिक थी, फिर भी नाट्यरचना का मन होने से महाराणा प्रताप के बाल्यकाल की घटना के आधार पर

'राष्ट्ररक्षणम्' की रचना की और भेज दिया दिल्ली संस्कृत अकादमी को। इसी दौरान शासन व्यवस्था से मेरी पोस्टिंग उदयपुर हो गई। वहीं पर मुझे इस रचना पर पुरस्कार घोषित होने का समाचार मिला, जिसे प्राप्त करने के लिए मैंने दिल्ली की यात्रा भी की। बाद में यह *'राष्ट्ररक्षणम्'* नाटक राजस्थान के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा सीनियर सेकेंडरी के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया। हाँ, याद आया, इस नाटक के प्रमुख प्रेरणा-गीत *'विधेहि राष्ट्ररक्षणम्'* ने मेरे बालक सौरभ के दिल में इतना असर किया कि वह घर में इधर-उधर भागते-दौड़ते सदा ही गाता रहता था। आज इन सबकी स्मृतियाँ ही मन-मस्तिष्क को झकझोर देती हैं।

अलंकार कविता में चार चाँद लगा देते हैं और न जाने क्यों मुझे अनलङ्कृत कविता नहीं भाती। अतः *'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'* के सिद्धान्त को मैंने कविता में भी चरितार्थ किया; या यों कहें कि प्रातिभ रचना स्वतः स्फूर्त होती है, जिसमें गुणालङ्कार अविनाभाव से प्रकट हो ही जाते हैं। *'माधव!'* नाम से मैंने एक श्लोक का निर्माण किया—

माघे मया वै रचितानुरक्तिः
स्मृतिः कृता चोपनिषद्यजस्रम्।
मूर्तेर्गृहीतापचितिश्च लब्ध्यै
तत्त्वं गतिर्माधव! किं मम स्याः॥

इस पद्य में शृङ्गार और शान्त—दोनों विरोधी रसों को श्लेष के माध्यम से युगपत् पिरोया गया। यह रचना मेरे लिए सायास रही। यहाँ कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति है, जहाँ नायिका और भक्त—दोनों का लक्ष्य सभङ्गश्लेष *'मा/धव!'* से पति और भगवान् श्रीकृष्ण अभिप्रेत हैं। ''क्या तुम मेरी गति बनोगे / नहीं बनोगे?''—इसमें काकु-ध्वनि स्वतः ही निकल रही है। कवितारूप यह एकमात्र श्लोक भक्त पक्ष और नायिका पक्ष की टिप्पणी के साथ *भारती* के मार्च 2000 के अङ्क में छपा। उस समय *भारती* के सम्पादक नानाशास्त्र-पराङ्गत पं० जगदीश जी साहित्याचार्य थे। इनके सम्पादकत्व में किसी रचना का स्वीकार होना अतीव दुष्कर था, वह भी एक श्लोक। कुछ समय पश्चात् एक कार्यक्रम में विद्वानों के बीच साहित्याचार्य जी के मुखारविन्द से *''क्या यह एक श्लोक ही लिखेगा?''* के रूप में प्रत्यक्ष आशीर्वादात्मक आदेश की प्राप्ति हुई और कालान्तर में *'माधव!'* शीर्षक की इस रचना के लिए छह श्लोक और बनाये, जिनके सभी श्लोकों में शृङ्गार और शान्त की युगपत् अभिव्यक्ति होती है।

4 सेवाकाल उत्तरार्द्ध और रचना-धर्मिता

मेरे सेवाकाल का उत्तरार्ध ज० रा० राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रोफेसर साहित्य के पद पर प्रोन्नति से प्रारम्भ होता है। यहाँ आने के बाद प्राशासनिक कार्य की भागदौड़ से परे साहित्यिक क्रियाकलाप का दौर शुरू हुआ। अध्ययन-अध्यापन के साथ रचना-धर्मिता ने गति पकड़ी और अब तक की गई रचनाओं का संकलन *सारस्वतसौरभम्* नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें गद्य, पद्य एवं नाट्य रचनाओं को कथ्य की दृष्टि से संचय किया गया। अब विश्वविद्यालय की सेवा के अनुरूप मौलिक रचनाओं की अपेक्षा शोधपरक लेखों की ओर

मुड़ना पड़ा और शोधलेख एवं शोध-सङ्गोष्ठी में सहभागिता बढ़ी, फिर भी मौलिक लेखन में कमी नहीं आई।

यही वह समय रहा जब व्यास बालाबक्ष शोध संस्थान के संस्थापक एवं संस्कृत-हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार आचार्य श्री उमेश शास्त्री ने संस्कृत नाटक *मुद्राराक्षस* पर बड़े पर्दे की संस्कृत फिल्म *मुद्राराक्षसम्* का निर्माण किया और इसके संस्कृत संवाद लेखन का दायित्व मुझे सौंपा, जिसे मैंने पूरा किया। इस फिल्म के प्रदर्शन का पहला प्रीमियर शो जयपुर के प्रतिष्ठित सिनेमाघर राजमन्दिर में 08 फरवरी 2006 को किया गया।

कुछ समय बाद हमारे विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो॰ रामकृष्ण आचार्युलु जी, जो हमारी नियुक्ति के आधार स्तम्भ रहे, का विदाई समय आ गया। आपके प्रति श्रद्धा से प्रतिभा को नई दिशा मिली और विदाई के लिए दिल ने दिमाग पर ज़ोर दिया। रविवार के दिन सूर्योदय के समय प्रो॰ आचार्युलु जी के लिए शार्दूलविक्रीडित जैसे बड़े छन्द में दो पद्यों की रचना हुई, जिन्हें स्टील की प्लेट पर उट्टङ्कित करवा कर स्मृति-स्वरूप भेंट कर कृतार्थ हुआ।

यही समय रहा जब *भारतीयस्त्रिरङ्गः* शतक काव्य का श्रीगणेश हुआ और निरन्तरता से गति बढ़ी। यह काव्य कल्पना की ऊँची उड़ान के साथ इतिहास को सँजोये हुए है, कल्पना ने इसे सजीव प्राणी का रूप दिया है —

कः प्राणीव त्रिरङ्गः
पृथ्वीतत्त्वं कदाचिद्धरिति च सलिलं श्वेतवर्णेऽपि तत्त्वं
तेजःकाषायरङ्गेऽथ चपलपवनं क्वापि दोधूयमाने ।
विश्वोत्तुङ्गोत्तमाङ्गे हिमगिरिसदृशे व्योमतत्त्वं दधानः
कः प्राणीव त्रिरङ्गो जगति विजयते पञ्चभूतान्वितोऽसौ ॥ 2 ॥

इसी बीच *राजस्थान पत्रिका* के प्रधान सम्पादक श्री गुलाब कोठारी के ज्ञानपीठ से पुरस्कृत काव्य *मैं ही राधा, मैं ही कृष्ण* के अनुवाद की कार्ययोजना मिली। इस योजना के मिलने का श्रेय *शब्दवेदः* के सम्पादक तथा हमारे संस्कृत शिक्षा विभाग, राजस्थान के माननीय श्री कैलाशचन्द्र चतुर्वेदी को जाता है। कार्याधिक्य के कारण मेरे द्वारा तीन वर्षों में *अहमेव राधा अहमेव कृष्णः* का अनुवाद पूरा हो प्रकाशित हुआ, जिसका लोकार्पण सितम्बर 2013 को आदरणीय श्री गुलाब कोठारी जी द्वारा उपराष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी से उनके आवास पर पद्मश्री डॉ॰ सत्यव्रत शास्त्री जी की अध्यक्षता में करवाया गया। इसी *अहमेव राधा अहमेव कृष्णः* ग्रन्थ पर साहित्य अकादेमी, दिल्ली से मुझे *संस्कृत अनुवाद पुरस्कार 2015* मिला। इस पूरी योजना के विषय में प्रो॰ रामानुज देवनाथन के साक्षित्व को विस्मृत करना मेरे लिए प्रज्ञापराध होगा।

यही वह समय रहा पितृचरण राष्ट्रपति-सम्मानित प्रतिनव-बाणभट्ट पं. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय के *समस्यासौहित्यम्* काव्य के सम्पादन का, जिसकी भूमिका लिखने के समय मैंने वर्णमाला का क्रमानुसार प्रयोग करते हुए प्रथम पद्ययुग्म की रचना की, जो आगे चलकर *वर्णवाग्विलासकाव्यम्* की रचना का प्रेरक बना। कृष्णचरित्र से सम्बद्ध इस वर्णैककाव्य के प्रत्येक उपजातियुग्मक में सभी वर्णों का क्रमिक प्रयोग किया गया है। इस काव्य का मङ्गलाचरण युग्मक यथा—

कारागृहे खेलति गोकुलेन्द्रो
घनान्धकाराङ्कितचत्वरेऽच्छे।
जोषं झटित्यञ्चलटङ्किताङ्गः
ठठ्ठाकरो डल्लकढौकिताणुम्॥ 1॥

तोकं तदोत्थाप्य दिधीर्षयैव
धुनिं नभस्ये परिपार्य फुल्लः।
'बालो भृतो मे यदि रे! ललामो'
विवेश शौरिः षुसदो हसित्वा॥ 2॥

इस *वर्णवाग्विलासकाव्यम्* को भरपूर आशीर्वाद मिला तत्कालीन हमारे कुलपति वैयाकरण तपःपूत आचार्य श्री रामानुज देवनाथन जी का।

5 कोरोना और रोना : केलिशून्यशतकम् एवं आत्मालापः काव्य का हेतु

सेवानिवृत्त के बाद कार्यभार से उन्मुक्त वातावरण में कुकाव्यकार समय के साथ जीता है और काव्य का प्रतिफलक बनता काव्य। यही मेरे साथ भी हुआ, जब कोरोना का रोना सारे विश्व में हाहाकार मचा रहा था। *कोरोना-नक्षत्रमाला* काव्य से कोरोनारूप काली महामारी का वर्णन केवल 'क' वर्ण से ही किया है, यथा—

कौबेरीकाष्ठाक्रमणकुकदना कालकूर्पासवाली
क्रीडार्थं काऽसौ किरति कुकलया कोटवी केशजालम्।
कोरोनाकाली कलयति कुणपान् कालकीला कदाचित्
क्रूरक्रोष्ट्रीयं कवलयति कथं क्रोधकाया कदन्ना॥

इस कोरोना ने मुझे 'शून्य' शब्द से प्रारम्भ होने वाले काव्य के लिए प्रेरित किया और फिर निर्मित हुआ *शून्यशतकम्*। कर्फ़्यू में 24 मार्च 2020 को निर्मित राजपथ के वर्णन का पहला श्लोक बना—

शून्यं राजपथं विलोक्य सदनादुत्थाय किञ्चिच्छनैः
निद्राव्याजमुपागतं जनहितं निर्वर्ण्य रक्षाबलम्।
विश्रब्धं परिगत्य मार्गमखिलं दृष्ट्वाऽद्य शेषस्थलं
गर्वोत्सृष्टगृहो बलेन बहुशो लोकश्चिरं ताडितः॥

इस कोरोना ने मेरे जीवन का लिया तो सर्वस्व, पर दिये *केलिशून्यशार्दूलम्* और *आत्मालाप* आदि काव्य के रूप में बहुत कुछ। कोरोना पिशाची मुझे करुणासागर में आकण्ठ डुबो डुबोकर

कालगाल तक ले गई, किन्तु कण्ठेकाल शङ्कर ने तारा के रूप रक्षित कर भवभूति की मंज़िल करुणरस की चरम सीमा तक पहुँचाया। पुत्र सौरभ के चले जाने पर निर्मित करुणरस से आप्लावित *आत्मालापकाव्यम्*। एक श्लोक यथा—

नव्यं स्फुरेत् सौरभम्

सत्काव्योद्भवभूतिभासुरमनाः तारानुभूशङ्करः
कारुण्ये भवभूतिभाग्य-भवने पादप्रसारेक्षमः।
आत्मालाप-मनःस्फुटाकृतिकृतौ विद्वत्प्रमाणं च मे
विद्वद्रत्नसमीक्षणक्षणपरं नव्यं स्फुरेत् सौरभम्॥ 06॥

इन काव्यों की रचना के बीच-बीच में अनेक शताधिक मुक्तक श्लोकों की रचना समय-समय पर हुई, जो सामयिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक घटनाओं को प्रकाश में लाते हैं। इनमें रूस-यूक्रेन युद्ध, अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा, भारत-रत्न लता मङ्गेशकर, रामलला की प्रतिष्ठा, काशी विश्वनाथ तथा उज्जयिनी महाकाल का कोरिडोर, ज्ञानवापी, संसद् में सैङ्गोल दण्ड की स्थापना, चन्द्रयान, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, मुण्डा बिरसा, योगदिवस, होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, तीज, मकर संक्रान्ति आदि प्रायः सभी विषयों पर मैंने श्लोक रचना की है। मेरे काव्यों में **शार्दूलविक्रीडित** तथा **स्रग्धरा** छन्दों का ही बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

यह दौर ऐसा रहा जब प्रतिष्ठित विद्वानों, साहित्यकारों के ग्रन्थ एवं काव्यों के लिए नान्दीवाक्, पुरोवाक् आदि लिखने का अवसर मिला, इनमें पद्मश्री केशवराव सदाशिव शास्त्री मुसलगाँवकर के *नाट्यशास्त्रपर्यालोचन* (दो खण्डों में) की पद्यमय 'नान्दीवाक्', डॉ प्रमोदकुमार शर्मा (सहआचार्य, जे०एन०यू०, दिल्ली) के *गोपाङ्गनावैभवम्* (संस्कृतमहाकाव्यम्) की पद्यमय भूमिका आदि। इसके अतिरिक्त विशिष्ट विद्वानों/साहित्यकारों के लिए अभिनन्दन ग्रन्थों में पद्यमय रचनाएँ छपीं, जैसे— लखनऊ से *अभिराजभारती* के लिए 'कालिदासोऽभिराजः' शीर्षक से अष्टक, वृन्दावन से पं० श्री श्रीनाथ शास्त्री 'श्रीश' स्मृतिप्रभा के लिए 'श्रीनाथदादागुरुः', जयपुर से *श्रुतान्वेषी* के लिए 'शास्त्रे श्रुतान्वेषकः' पञ्चकम् आदि।

इसी प्रकार आधुनिक साहित्यकारों के काव्यसंग्रहों में अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं, जैसे— *स्वातन्त्र्यरसायनम्* (सम्पादक: डॉ अरविन्द कुमार तिवारी) में 'राष्ट्रकेसरी एकादशात्मकः', *रघुनाथायनम्* (सम्पादक: डॉ० अरविन्द कुमार तिवारी) में 'शुभाशंसनम्' तथा दो कविताएँ— 'श्रीरामजन्मस्थली' एवं 'प्राणप्रियो राघवः' आदि।

यहाँ यह भी उल्लेख आवश्यक है कि सहधर्मी साहित्यकारों के साथ क़दम से क़दम मिलाते हुए मैंने संस्कृत गजल में भी अपना स्थान बनाया और अनेक गजलें लिखीं। इस सन्दर्भ में संस्कृत गजलछन्द तथा शाङ्करी छन्द के लक्षण की भी रचना की, जिसे देवर्षि कलानाथ शास्त्री आदि विद्वानों ने मान्यता दी—

देवर्षि कलानाथ शास्त्री: सम्यक्! शतशो वर्धापनानि, नूतनच्छन्दसः प्रवर्तनोपलक्ष्ये।

प्रो. केदारनारायण जोशी: अभिनन्दनीया इयं अभिनवा उद्भावना। भूयांसि

वर्धापनानि अभिनन्दनानि च।
प्रो. बालकृष्ण शर्मा: साधुवादाः नूतनच्छन्दोविधात्रे सुहृद्वराय कवितल्लजाय।

यहाँ ग़ज़ल के लक्षण पर दृष्टिपात करते हुए—

मद्रचितं नवं 'गज्जलिका'-च्छन्दोलक्षणं यथा—
नानावृत्तमयी मतान्तिमपदा पद्यान्तनित्योत्सवा।
वित्ता गज्जलिका द्विपादवलयाऽसंख्यातभूमिः संस्कृता॥

गज् धातोः 'स्वने' एवं 'मदे' अर्थे क्विप्प्रत्यये 'जालयति' अर्थात् आच्छादयति इति *गज्जलिका*।
उदाहरण के लिए केवल एक पूरी गजल की प्रस्तुति – *तारायते*

सिद्धो गज्जलिकासमुद्रतरणे किं कोऽपि तारायते।
'आत्मालाप'-कविर्वियोगकविता-कर्त्तात्र तारायते॥ 1॥

लक्ष्यास्यै सततं क्रियानवरतो तारामुखी साहसी।
सर्वाश्चर्यमणिप्रदाननिपुणः सर्वोऽपि तारायते॥ 2॥

पारावारतलस्थितो मणिचयो मन्थानदण्डाचलः।
मन्दामन्दचलद्गिरौ समुदितः चन्द्रस्तु तारायते॥ 3॥

विद्यादैवतमुख्यरूपगणिता तारा रसाप्लावने।
तद्ध्यानावसरोपलब्धकवितो मुग्धोऽपि तारायते॥ 4॥

व्यग्रो गज्जलिकाभिलाषतरणिः काव्याम्बुधेः पारगः।
शब्दार्थोभयकेनिपातककरः तीरे च तारायते॥ 5॥

नारीभिर्व्रतधारणोत्तरनभो-दत्तेक्षणाभिः सदा।
दृष्टः शुभ्रकलानिधिर्नयनयोः चन्द्रोऽपि तारायते॥ 6॥

मर्यादापुरुषोत्तमो दशमुखाऽभ्यामर्दतेजारविः।
तारान्तर्बलसंयुतो रघुपती रामोपि तारायते॥ 7॥

मेघच्छन्नमना: कथं कविरवि: काव्याम्बरे काशताम्।
ओमात्मोष्णसहोनुकारसरणो सर्वत्र तारायते॥ 8॥

सद्योनिर्वृतिलब्धकाव्यशरणो ब्रह्मस्वरूपः कविः।
ब्रह्माण्डान्तरविष्टधीविलसितः कश्चिन्नु तारायते॥ 9॥

केलौ शून्यपदाद्यकाव्यरचने लब्धक्षणः शङ्करः।
शून्यात्मा भवभूतिसौरभरसो जातोऽपि तारायते॥ 10॥

शार्दूले कषशून्यसौरभरसो दत्तेक्षणः शङ्करः।
शून्याद्यं नवकान्तकेलिलसितं काव्यञ्च तारायते॥ 11॥

पङ्गुर्गज्जलिकाम्बरेऽयमपि रे! शिष्टः कविः 'शङ्करः'।
रात्रौ चन्द्रमसो दिवा च तरणेः शक्त्या स तारायते॥ 12॥

वर्तमान में मेरे द्वारा निम्बाहेडा, चित्तौड़गढ़ के *श्रीकल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय* के कुलगीत एवं लोकदेवता श्री कल्लाजी राठौड़ के लिए *कल्लाजीपञ्चकम्* की रचना की गई है। वर्तमान में कलकत्ता में घटित रेप-काण्ड पर भी कविता बनाकर प्रेषित की है। पूर्व में अनेक कथाएँ भी लिखी गईं, जिनमें दिल्ली के निर्भया-काण्ड पर प्राञ्जल संस्कृत में लिखी गई कहानी *'नारा'* शीर्षक से है, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस प्रकार आज भी समसामयिक विषयों तथा घटनाचक्र पर काव्य, गजल, कथा तथा रूपक आदि विधाओं में रचना हेतु लेखनी निरन्तर क्रियाशील है।